विश्नोई पंथ और पर्यावरण संरक्षण

डॉ. पुष्पा विश्नोई
व्याख्याता (हिन्दी)
राजकीय महाविद्यालय, पीपाड़ शहर (जोधपुर)

गुरु जाम्भोजी की जितनी महत्ता अध्यात्म एवं सामाजिक चेतना के संबंध में है, उससेकहीं अधिक पर्यावरण चेतना के संबंध में है। गुरु जाम्भोजी के सामाजिक चिन्तन की परिधि अत्यंत व्यापक रही है। उन्होंने सामान्य जन में सामाजिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जागृति के साथ आर्थिक व पर्यावरण चेतना का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मध्यकालीन विषम परिस्थितियों से जूझ रहे नितान्त सरल एवं भोले–भाले लोगों के बहुमुखी विकास हेतु, उन्होंने अपना समस्त जीवन लगा दिया। उनका उद्देश्य जन–सामान्य में संपूर्ण एवं दीर्घकालीन परिवर्तन लाना था तथा इस हेतु व्यक्ति के प्रत्येक पहलू व लोक चेतना के व्यापक आयाम तक स्पर्श करना आवश्यक था। तत्समय में भी आज की भाँति प्रकृति के प्रति मानवीय अनुदारता चरम पर थी। गुरु जाम्भोजी ने अपनी दूरदर्शिता की क्षमता का परिचय देते हुए प्रकृति, प्राणी तथापर्यावरण की महत्ता से जनता को परिचित कराया। पर्यावरण का संबंध धर्म से जोड़कर उसे बल प्रदान किया।

पर्यावरण शब्द परि+आवरण के संयोग से बना है। जिसका अर्थ है परि–चारों तरफ, आवरण–घेरा, यानी प्रकृति में जो भी हमारे चारों ओर परिलक्षित होता है–वायु, जल, मृदा, पेड़–पौधे, प्राणी आदि– सभी पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं तथा इनके द्वारा ही पर्यावरण की निर्मिति होती है,जिसका तात्पर्य हमारे चारों तरफ के आवरण से है। पर्यावरण हमारे चारों ओर का आवरण है, जिसमें हम अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वह वातावरण ही है। इसमें जल, वायु, भूमि तथा पृथ्वी आदि प्रकृति के समस्त तत्त्व निहित हैं। पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत इकाई है जो किसी जीवधारी अथवा परिरक्षित आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं।[1]

सभी प्रकार के जीव और भौतिक तत्त्व अपनी क्रियाओं से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। सामान्य अर्थों में यह हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी जैविक और अजैविक तत्त्वों, तथ्यों, प्रक्रियाओं और घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है।[2] पर्यावरण का तथ्यतः अर्थमात्र किसी व्यक्ति से, उसके परिवेश से न होकर समाज के, राष्ट्र के और इस वसुधा, जिस पर हम वास करते हैं, जीवनयापन करते हैं तथा जो अपनी समग्रता में, व्यक्ति, समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्रों को प्रभावित करने में सक्षम है, से है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण की व्यापकता पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं, नद–नदियों, उत्तुंगगिरि शिखर–पहाड़ों या मात्र किसी तंत्र विशेष तक न होकर, उस सम्पूर्ण तथ्यपरक वास्तविकता से है, जिस पर हमारा समस्त आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास आश्रित है।[3] सामान्यतः पर्यावरण को मनुष्य के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है और मनुष्य को एक अलग इकाई और उसके चारों ओर व्याप्त अन्य समस्त चीजों को उसका पर्यावरण घोषित कर दिया जाता है। किन्तु यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि अभी भी इस धरती पर बहुत सी मानव सभ्यताएँ हैं, जो अपने को पर्यावरण से अलग नहीं मानती हैंऔर उनकी नजर में समस्त प्रकृति एक ही इकाई है, जिसका मनुष्य भी एक हिस्सा है।[4]

पर्यावरण का संबंध सीधे–सीधे रूप में प्रकृति से है। प्रकृति में जैविक घटक सभी जीव–जन्तु, सूक्ष्म जीवाणु, कीड़े–मकोड़े, पेड़–पौधे तथा मनुष्य एवं अजैविक–घटक में जड़ तत्त्व, पहाड़, नदी, हवा, जलवायु आदि आते हैं। अतः प्रकृति समस्त चराचर जगत् से संबंधित है। जड़ तथा चेतन दोनों घटक मिलकर प्रकृति का निर्माण करते हैं। इन सब से मिलकर पर्यावरण की सृष्टि होती है। पृथ्वी का पर्यावरण–सन्तुलन सभी जीवों के लिये आवश्यक होता है। मनुष्य के लिए तो और भी आवश्यक।[5]

पर्यावरण के प्रति मानव का प्रारम्भ में घनिष्ठ संबंध रहा परन्तु जैसे–जैसे मानवीय सभ्यता का विकास हुआ, वह प्रकृति सेदूर होने लगा। उसने अपने निवास हेतु गाँव, बस्ती तथा नगरों का निर्माण कर लिया। मनुष्य स्वयं को श्रेष्ठ समझने लगा एवं प्रकृति के प्रति उपेक्षित भाव रखने लगा। वास्तव में हम प्रकृति की संतान हैं, स्वामी नहीं। स्वामी बनने की लालसा ही हमारे पतन का कारण है।[6] पर्यावरण संरक्षण का ज्ञान मानवीय सुरक्षा हेतु बेहद आवश्यक है। मनुष्य अपने उपयोग हेतु प्रकृति का शोषण करने लगा। उसने प्रकृति से जो भी लिया, उसके स्थान पर नवीन वनस्पति आदि लगाकर पोषण नहीं किया। यदि एक संतुलन, सामंजस्य है तो वह स्वस्थ रहेगा, शोषण नहीं होगा और उसकेमाध्यमसे एक पोषण भी मिलेगा और पारस्परिकता बढ़ेगी।[7]प्रकृति में मानव, मानवेतर जीवों तथा पादपों का अजैविक घटकों के मध्य स्वस्थ संतुलन ही पर्यावरण संरक्षण है।

गुरु जाम्भोजी ने मध्यकाल के संक्रामक–युग में सामाजिक धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पर्यावरण के परिष्करण के साथ ही सजीव प्राकृतिक पर्यावरण, जो पशुओं, पक्षियों, जीवधारियों, हवा, जलादि विभिन्न जड़–चेतन घटकों से निर्मित है, जिसे सामान्यतः 'पर्यावरण' कहा जाता है, उसके संरक्षण की चेतना लोक में जाग्रत् की।

गुरु जाम्भोजी भक्तियुग के महान् संत होने के साथ–साथ महान् चिन्तक, दूरद्रष्टा तथा विश्व के प्रथम पर्यावरणविद् लोकचेता थे। जाम्भोजी के चिन्तन का केन्द्र सामान्यजन था। उनमें ज्ञान, आचार–व्यवहार की शुद्धता तथा जीवन को एक सार्थक दिशा प्रदान कर उनकी दशा सुधारना ही उनका मूल ध्येय था।

गुरु जाम्भोजी जन–साधारण की सहायता तथा सुधार हेतु जीवनपर्यन्त प्रयत्नशील रहे। उन्होंने मरुस्थल के लोगों की दीन–हीन अवस्था से साक्षात्कार किया था। उन्होंने लोक को अभावों तथा अकालों से जूझते हुए देखा। मरुस्थल का निवासी भ्रम में डूबकर आवश्यकता व सुरक्षा के भेद को न समझ कर आत्मघाती कार्यों में संलग्न हो रहा था। प्राकृतिक अनुदारता से ग्रस्त इस भूखण्ड को अपनी आवश्यकताओं के नंगेपन से उजाड़ और वीरान बना रहा था। उसका यह नंगापन अकाल व महामारी के समय विवशता व लाचारी से घुलकर इतना विकृत रूप धारण कर लेता था कि वह इस प्राणदायक प्रकृति के प्राण लेने को उतारू हो जाता था। उसका यह मनोवेग वातावरणीय संतुलन एवं उस पर आधारित संस्कृति का शत्रु था। अपने जीवन एवं पशुधन को बचाने के लिए वह सूखी धरती की सूखी टहनी को भी नहीं छोड़ता था। प्राकृतिक अनुदारता के साथ–साथ मनुष्यकृत कुकर्मों ने मरुस्थलीय जीवन को संकट में डाल दिया था।[8] लेकिन वह ऐसा अज्ञानतावश कर रहा था। मरुस्थल में निरन्तर अकाल का प्रमुख कारण वनस्पति का नहीं होना था। लेकिन लोक–मानस इस तथ्य से अनभिज्ञ था। जबकि अधिकांश लोगों की अर्थव्यवस्था का आधार पशुपालन एवं कृषि ही था। प्राकृतिक असंतुलन के कारण वर्षा के अभावमेंव्यक्ति को पशु सम्पदा एवं खेती से वंचित होना पड़ रहा था।

गुरु जाम्भोजी ने लोक की इन विषमताओं को उजागर कर उनकी अभिव्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहे अपितु इसके निराकरण का सटीक मार्ग भी निकाला। मध्यकाल की भोली–भाली, अशिक्षित जनता में पर्यावरण चेतना का संचार कर प्रकृति तथा उनकी आर्थिक स्थिति दोनों को ही संबल प्रदान किया।

अकाल की स्थिति में यहाँ के लोग अपने जीवन एवं पशुओं की रक्षा हेतु ठूँठ पेड़ों को भी नहीं छोड़ता था। तब जाम्भोजी ने ऐसे लोगों को अपना गुरुत्व प्रदान करते हुए पेड़ों एवं प्रकृति की रक्षा तथा प्राणी मात्र कीसुरक्षा का संदेश दिया।[9] उन्होंने कहा कि जब तक इस क्षेत्र में पेड़–पौधे और जीव–जन्तुओं की रक्षा का सिद्धान्त कार्यरूप में परिणत नहीं होगा, तब तक यह क्षेत्र अकाल एवं दुर्भिक्ष से मुक्त नहीं हो सकता। आज थार मरुस्थल में प्रकृति और पक्षी–जीवन, विशेषकर खेजड़ी, काले हिरण और मोर की जो अतुल सम्पदा दिखती है, उसका श्रेय निश्चित रूप से श्री जाम्भोजी को जाता है।[10] यद्यपि उनके समय में पर्यावरण प्रदूषण, वायु प्रदूषण, जलप्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, ओजोन परत में छिद्र,

रेडियोधर्मी प्रदूषण,प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, रासायनिक प्रदूषण तथा ग्लोबल वार्मिंग जैसी कोई समस्या नहीं थी परन्तु अकाल एवं वनस्पतिहीनता की समस्या तो थी ही। साथ ही मानव अपने मनोरंजन तथा मांस भक्षण हेतु निरीह, निर्दोष एवं अबोल जीवों की हत्या करता रहता था। गुरु जाम्भोजी ने तभी भांप लिया था कि मानव के विकास एवं उसके अस्तित्त्व के लिए प्रकृति में मानव, जीव तथा पेड़–पौधों आदि विभिन्न घटकों का परस्पर संतुलन आवश्यक है। उन्होंने स्वस्थापित 'विश्नोई पंथ' के 29 नियमों की आचार संहिता में दो नियम प्राकृतिक संतुलन हेतु दिए, **''जीव दया पालणी अर रूंख लीलो नहींघावै।''**[11] जिसका पालन विश्नोई पंथ के अनुयायी अद्यतन अबाध गति से अक्षरशः कर रहे हैं। प्रकृति के तीन प्रमुख घटक है– मानव, वनस्पति एवं मानवेतर जीव–जन्तु। इनमें मानव ही सामर्थ्यवान है। अन्य दोनों घटकों का अस्तित्त्व मानव की इच्छा पर निर्भर है। लेकिन मानव स्वयं भी तभी सुरक्षित है, जब वनस्पति एवं जीव–जन्तु सुरक्षित हों। जिसे विज्ञान की भाषा में पारिस्थिति विज्ञान (इकोलॉजी) कहा जाता है। इन्हीं तथ्यों को समझने वाले गुरु जाम्भोजी ने अपने अनुयायियों को पर्यावरण सुरक्षा का मूल मंत्र दिया।

गुरु जाम्भोजी ने जीवों पर दया तथा वृक्षों की रक्षा का संदेश दिया। धरती पर स्थित प्राणियों के विभिन्न वर्ग प्रारम्भ से ही पर्यावरण संरक्षण में सहायक रहे हैं। किसी भी वर्ग के प्राणियों की हत्या करने से जीवों का आपसी संतुलन बिगड़ जाएगा और प्राणियों के इस संतुलन के बिगड़ते ही धरती पर प्रदूषण फैलना प्रारम्भ हो जाएगा। इसलिए जाम्भोजी ने समस्त जीवों पर दया करने की बात कही है।[12] पर्यावरण की शुद्धता, वायु की शुद्धता तथा प्रदूषण रोकने में पेड़ों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरु जाम्भोजी इन तथ्यों से पूर्णतया परिचित थे। अतः उन्होंने लोक भाषा में, लोक बुद्धि के अनुरूप उपमानों का प्रयोग कर लोगों को समझाया, जिससे लोगों ने अत्यंत साधारण रूप में उनकी बातों को अंगीकार कर लिया। विश्नोई पंथ के अनुयायियों हेतु अहिंसा एवं वृक्षरक्षा संबंधी नियम मात्र सैद्धान्तिक नहीं हैं अपितु पूर्णतः व्यावहारिक हैं। आज भी उनके आचरण में विद्यमान हैं। पर्यावरण की रक्षा हेतु सैकड़ों विश्नोइयों ने प्राणाहुति दी है।

29 नियमों में पानी, जलाने की लकड़ी (ईंधन) तथा दूध[13] को छानकर प्रयुक्त करने के नियम का उद्देश्य सूक्ष्म जीवों की रक्षा से ही है। आज भी विश्नोई लोग इनका कट्टरता से पालन करते हैं तथा जलाने हेतु सदैव सूखी व स्वच्छ लकड़ी ही प्रयुक्त करते हैं। थाट (भेड़–बकरी) अमर रखना[14] तथा बैल को बधिया (नपुंसक)[15] न करवाना आदि नियम भी जीव रक्षा एवं दया से ही प्रेरित हैं। माँस नहीं खाने[16] का नियम भी पर्यावरण संरक्षण तथा जैविकी चक्र की सुरक्षा हेतु सार्थक है। गुरु जाम्भोजी ने पर्यावरण संरक्षण को धर्म से जोड़कर और अधिक सशक्त एवं लोकग्राह्य बना दिया। विश्नोई पंथ के पर्यावरण संरक्षण के संबंध में एक विशेष तथा रोचक बात यह है कि वे स्वयं न तो जीवहत्या करते हैं तथा न ही पेड़ों को काटते हैं। यह तो शायद कई धर्मों के अनुयायी, जो अहिंसा का पालन करते हैं। वे भी मानते हैं, परन्तु विश्नोई समाज स्वयं के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी हिंसा करने तथा वृक्षों को काटने से रोकता है। उन्हें ऐसा न करने हेतु समझाता, मनाता एवं रोकता भी है।

'बरजत मारै जीव, तहां मर जाइयै।'[17]

इसके उपरान्त अगर शत्रु नहीं माने तथा अत्यंत शक्तिशाली है तो विश्नोई समाज के लोग संघर्ष करते हुए प्राणों की बाजी लगा देते हैं। ऐसा उदाहरण अन्य समाज, धर्म तथा पंथ में नहीं मिलते हैं।

29 नियमों में एकनियम–नित्य प्रतिदिन हवन का है।[18] हवन (होम) की अग्नि वातावरण में व्याप्त प्रदूषण को दूर कर पर्यावरण को शुद्ध बनाती है। जाम्भोजी के समय से ही सामूहिक हवन की प्रथा विश्नोई समाज में चली आ रही है। आज विश्नोइयों के सभी प्रमुख धार्मिकस्थलों पर आयोजित होने वाले मेलों पर तो कई मन (पुराना तौल 40 किलो) घी का हवन होता है। इस प्रकार का हवन पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने में सहायक होता आया है। विश्नोइयों के घरों में नित्य प्रातःकाल हवन होता है, जिससे घर का वातावरण शुद्ध रहता है।[19]

गुरु जाम्भोजी ने अपनी वाणी में अहिंसा एवं पर्यावरण के विषय में लोगों को जाग्रत् किया। उन्होंने वनस्पतिके संरक्षण तथा जैव विविधता को बचाने हेतु लोगों को प्रकृति के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार एवं सोच प्रदान की, विध्वंसकारी जीवनशैली को बदलकर संरक्षणात्मक वैकल्पिक जीवनविधि को बतलाया।

गुरु जाम्भोजी ने व्यक्ति को समाज तथा उसकी संस्कृति के विषय में सुप्त भावों को जगाकर संस्कारों की महत्ता से परिचित करवाया। लोक संस्कृति का परिष्कारकर उसका संर्वधन एवं परिवर्धन का महनीय कार्य किया। अकाल–अभावों में जी रहे लोक को प्रकृति, पर्यावरण व जैव विविधता के संरक्षण का दूरगामी पाठ पढ़ाकर मानव जाति की रक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अपने अनुयायियों के रूप में पर्यावरण के पहरुओं को प्रेरित करके तप्त, त्रस्त धरा पर जीव एवं वनस्पति को संरक्षण प्रदान किया।

---

[1]http://www.britannica.com/science/environment

[2]प्रतियोगिता दर्पण, मार्च 2009 – सुरेश लाल श्री वास्तव, पृ. 423

[3]चिन्तन–सृजन वर्ष, अंक–1 – राजीव रंजन उपाध्याय, पृ. 82

[4]Jamieson, Date. (2007) The Heart of Environmentalism. In R. Sandier & P.C. Pezzullo. Environmental Justice and Environmentalism. (pp. 85-101). Massachusetts institute of Technology Press.

[5]राजस्थान के संत कवियों के दर्शन एवं उनकी लोकधर्मिता – डॉ. रामप्रसाद दाधीच'प्रसाद', पृ. 111

[6]पर्यावरण संरक्षण और खेजड़ली बलिदान – डॉ. बनवारीलाल सहू,पृ.

[7]पर्यावरण और सनातन दृष्टि – छगन मेहता, पृ. 33 गद्य–पद्य संकलन संस्करण 2007 अल्का पब्लिकेशन अजमेर

[8] पंचशती स्मारिका – (सम्पा.) बनवारीलाल सहू, पृ. 19 (बिश्नोई धर्म एवं समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– बृजलाल बिश्नोई)

[9]अमरज्योति पत्रिका, वर्ष 65, अंक 6, जून 2014, पृ. 17
(विश्नोई पंथ में पर्यावरण चेतना – श्रीमती पुष्पा विश्नोई)

[10]पंचशती स्मारिका – (सम्पा.) बनवारीलाल सहू (जीव दया पालणी, रूंख लीलौ नहिं घावै'– पुरखाराम बिश्नोई सहू), पृ. 66 ।

[11]29 नियम में नियम सं. 19 एवं 20

[12]पर्यावरण संरक्षण एवं खेजड़ली बलिदान – डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 38

[13]29 नियम में नियम सं. 10

[14]29 नियम में नियम सं. 23

[15]29 नियम में नियम सं. 24

[16]29 नियम में नियम सं. 28

[17]वील्होजी की वाणी – (सम्पा.) कृष्णलाल विश्नोई, (बत्तीस आखड़ी), पृ. 231

[18]29 नियम में नियम सं. 9

[19] पर्यावरण संरक्षण एवं खेजड़ली बलिदान – डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 39